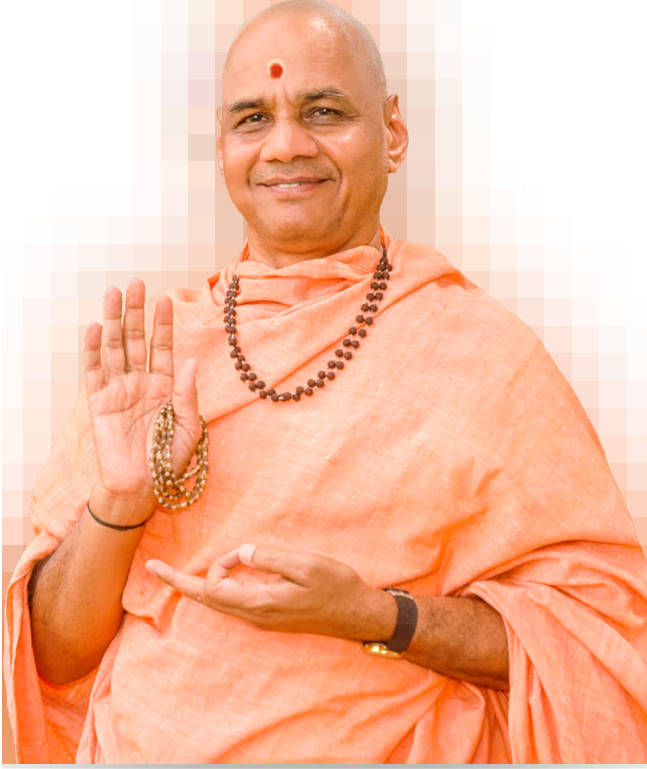




1 • अग्रदूतों के मन की बात

संत वाणी : भगवद्गीता : आनंद का विज्ञान

भगवद्गीता के अनुशीलन हेतु इससे उत्कृष्ट और प्रामाणिक विषय अन्य नहीं हो सकता ।
श्रीमद्भगवद्गीता हमारे समस्त वेदों एवं उपनिषदों का नवनीत और सार-सर्वस्व है ।

६ मिनट हिन्दी

- परम पूज्य स्वामी श्री गोविन्ददेव गिरिजी महाराज, संस्थापक अध्यक्ष, गीता परिवार



प. पू. स्वामी गोविन्ददेवगिरि जी महाराज भगवा वस्त्रों में हाथ में रुद्राक्ष माला लिए चलते हुए।

वेद परमात्मा का निःश्वास हैं “वेदोऽस्य निःश्वसितं वेदाः।” ईश्वरीय श्वास के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करना केवल असाधारण प्रज्ञावान आचार्यों का कार्य है; किंतु साक्षात् भगवान के मुखारविंद से निःसृत वाणी का अर्थ ग्रहण करना उसकी तुलना में अधिक सुगम है। चूँकि यह भगवान की जाग्रत अवस्था में प्रकट वाणी है, अतः यह श्रुति-तुल्य ही है।

गीता की विलक्षणता यह है कि इसका प्राकट्य हिमालय की किसी प्रशांत कंदरा, गंगा-तट के सुरम्य आश्रम अथवा किसी देवालय के शांत प्रांगण में नहीं हुआ। यह समरांगण में उच्चरित हुआ महाशास्त्र है। कुरुक्षेत्र के भीषण रणक्षेत्र में, उभय पक्षों की सेनाओं के मध्य, जीवन के ज्वलंत संघर्षों के बीच भगवान योगेश्वर ने अर्जुन को यह अमृतमयी दृष्टि प्रदान की।

जब तक मानव-संसार विद्यमान है, द्वंद्व और संघर्ष कभी समाप्त नहीं होंगे। सतयुग में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष थे, त्रेता में रावण और कुंभकर्ण हुए, द्वापर में शिशुपाल और दंतवक्त्र आए, और आज कलियुग में यह अंतर्द्वंद्व हम सभी के भीतर व्याप्त है। दैवी और आसुरी संपद् का यह सनातन विभाजन सदैव रहेगा; केवल उनका अनुपात परिवर्तित हो सकता है। सत्त्व, रज और तम तीनों गुणों की यह टकराहट शाश्वत है, और जीवन के इसी महासंग्राम में विजय-श्री प्राप्त करने की अचूक संजीवनी भगवद्गीता है।

सर्वांगीण जीवन और पंचकोश

कुरुक्षेत्र का युद्ध केवल कौरवों और पांडवों का ऐतिहासिक संघर्ष नहीं था, वह वस्तुतः हमारे आंतरिक विकास और अस्तित्व के प्रत्येक तल पर चलने वाले द्वंद्व का प्रतीक है। हमारा व्यक्तित्व केवल बाह्य स्थूल देह तक सीमित नहीं है, यह पंचकोशात्मक है:

- अन्नमय कोश
- प्राणमय कोश
- मनोमय कोश
- विज्ञानमय कोश
- आनंदमय कोश

वैदिक वांग्मय इन पाँचों स्तरों पर समग्र कल्याण ('स्वस्ति') का विधान करता है। सर्वांगीण स्वस्ति का यथार्थ अभिप्राय इन पाँचों कोशों की संतुलित शुद्धि है।

गीता का सर्वाधिक पावन और आधारभूत शब्द है “स्वस्थ”। स्वस्थ होने का अर्थ केवल शारीरिक आरोग्यता नहीं, अपितु 'स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः' अर्थात् स्वयं की आत्मा में स्थित हो जाना है। यह एक गंभीर साधना है। गीता हमें कहीं अन्यत्र पलायन का उपदेश नहीं देती:

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतद् आत्मन्येव वशं नयेत्॥

जहाँ-जहाँ यह चंचल और अस्थिर मन बहिर्मुखी होकर भटके, वहाँ-वहाँ से इसे संयमित कर आत्मा में ही स्थिर करना है। जब तक इंद्रियाँ केवल बाहर के विषयों को देखती रहेंगी, मानव संताप भोगता रहेगा। समाधान केवल और केवल अंतर्मुखी यात्रा में है।

अंतर्निहित चैतन्य का साक्षात्कार

परमपूज्य रमण महर्षि से जब उनकी प्रिय गीता-उक्ति पूछी गई, तो उन्होंने संपूर्ण गीता की महत्ता स्वीकारते हुए इस श्लोक को उद्धृत किया:

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

आनंदस्वरूप परमात्मा हमारे अंतःकरण में ही चैतन्य रूप से प्रतिष्ठित हैं। हमारी मूलभूत भूल यह है कि हम उस परम आनंद को बाह्य प्रपंचों में खोजते हुए भटक रहे हैं।

जोधपुर के एक संपन्न सेठ जी का दृष्टांत इस सत्य को पूर्णतः उद्घाटित करता है। सेठ जी ने अपने भवन में अथाह स्वर्ण-निधि संचित कर रखी थी, किंतु देहावसान से पूर्व वे अपनी अगली पीढ़ी को इसका भेद न बता सके। अकूत संपत्ति के होते हुए भी उनके वंशज दारिद्र्य और दैन्य में जीने लगे। एक दिन उनके पिता के वृद्ध मित्र आए और परिवार की दुरावस्था देखकर बोले

—“तुम्हारे पिता ने आजीवन जो संचित किया, वह इसी गृह की भूमि में सुरक्षित रखा है। अपने ही घर का उत्खनन करो।” जैसे ही उन्होंने भूमि की खुदाई की, उन्हें वह अक्षय निधि प्राप्त हो गई और उनका दारिद्र्य क्षणभर में विलीन हो गया।

यह कथा हम सभी के जीवन का यथार्थ है। परम निधि हमारे ही अंतःस्थल में अंतर्निहित है, जिसे हम विस्मृत कर चुके हैं। पूज्य स्वामी हरिहरानन्द जी महाराज जैसे आत्मदर्शी महापुरुष आकर हमें यही स्मरण कराते हैं कि जिसे तुम बाहर खोजकर विलाप कर रहे हो, वह परम धन तो तुम्हारे अपने ही भीतर विद्यमान है। वैकुण्ठ, गोलोक या अन्यत्र किसी बाह्य लोक में भटकने की आवश्यकता नहीं है; आवश्यकता केवल आत्मसंज्ञान की है। जैसा कि गीता उद्घोष करती है

“आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।”

मनुष्य की विलक्षणता : आत्म-बुद्धि

इस नश्वर सृष्टि में मानव-जन्म की अद्वितीय महिमा क्या है? दार्शनिक अरस्तू का यह कथन कि 'मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है', पूर्ण सत्य नहीं है। आंशिक बुद्धि पशु-पक्षियों में भी होती है गज, वानर अथवा डॉल्फिन भी व्यवहार-कुशल और बुद्धिमान होते हैं। मनुष्य की वास्तविक विशिष्टता उसकी बौद्धिक क्षमता नहीं, अपितु उसकी 'आत्म-बुद्धि' (आत्म-चेतना) है।

“मैं कौन हूँ? मेरा मूल स्रोत क्या है? इस चराचर जगत का अधिष्ठान कौन है?” यह जिज्ञासा केवल मनुष्य की चेतना में ही प्रस्फुटित हो सकती है। शीश पर तारों जड़ा अनंत नभोमंडल और अंतःकरण में विराजमान नैतिक चैतन्य इन दोनों पर विचार करने का सामर्थ्य केवल मानव के पास है। इसी गूढ़ तत्त्व के कारण महाभारत ने सिंहनाद किया है:

गुह्यं ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

देवता हों या तीर्थ, संपूर्ण ब्रह्मांडीय संपदा अंततः हमारे अपने चैतन्य में ही समाहित है। जब तक यह चेतना बहिर्मुखी है, तब तक जगत एक अंतहीन भटकाव है; और जैसे ही यह अंतर्मुखी होकर निज-स्वरूप में अवस्थित होती है, जीवन का कण-कण परम आनंद का अनुष्ठान बन जाता है।

भगवद्गीता उसी अंतर्गता का विज्ञान है जो हमें कर्म के कुरुक्षेत्र से उठाकर आत्मा के शांत और शाश्वत आनंद-धाम में प्रतिष्ठित कर देती है।

ॐ